RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-05
May-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

सूफी रचनाकार नूर मोहम्मद

डॉ. प्रदीप कुमार सिंह

अध्यक्ष– हिन्दी विभाग साठये महाविद्यालय (मुंबई विद्यापीठ) मुंबई – महाराष्ट्र

उपलब्ध सामग्री के अवलोकन एवं अनुसंधान के प्रकाश में नूर मोहम्मद के जीवन का कोई भी प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है उनकी रचनाओं के आधार पर जो बातें प्रकाश में आ सकी हैं उन्हीं पर पूर्णतः संतोष करना पड़ा है। अपने आरंभिक ग्रंथ ढंद्रावतीश में नूर मोहम्मद ने अपने निवास स्थान सबरहदश का उल्लेख इन शब्दों में किया है :

कवि अस्थान कीन्ह जेहि ठाऊँ,
सो वह ठाऊँ सबरहद नाउं।
पूरब दिस कइलास समाना,
अहै नसीर दीन को थाना।''१

आचार्य चंद्रबली पाण्डेय के अनुसार 'सबरहद' नामक स्थान शाहगंज, जौनपुर में है।२ डॉ. कन्हैया सिंह, आचार्य चंद्रबली पाण्डेय के मत से पूर्णतः सहमत है। इस धारणा का मुख्य आधार संभवतः आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में विद्यमान नूर मोहम्मद विषयक सामग्री है।३ परंतु शायद ही किसी अन्य हिंदी लेखक ने इस विषय में कोई अतिरिक्त जानकारी दी हो।

जौनपुर गजेटियर में 'सबरहद' का सविस्तार उल्लेख मिलता है। गजेटिर के अनुसार 'सबरहद' एक कृषि प्रधान गाँव है। यह गाँव शाहगंज से दक्षिण दिक्षा में दो मील के फासले पर परगना उंगली तहसील खुतहान में पड़ता है। इसका फासला मुख्य नगर जौनपुर से उत्तर दिशा में बीस मील है। सन १६०१ ई. में यहाँ की जनसंख्या २०५१ थी जिसमें २०२१ मुसलमान थे और शेष अन्य जातियों के लोग। मूलतः यह सैय्यदों द्वारा बसाया गया एक पुराना गाँव है, जिसमें एक प्राचीन इमामबाड़ा और एक अत्यंत पुरानी मस्जिद है। यह इमारत बंदगीशाह के नाम से प्रसिद्ध है।रु "नसीर दीन को थाना'' अर्थात नसीरूद्दीन की दरगाह 'पूरब दिस कइलास समाना' अर्थात पवित्र कैलाश पर्वत के समान पूरब दिशा में स्थित। इसका कोई संकेत सबरहद संबंधी विवरणों में नहीं मिलता। गजेटियर में जिस प्राचीन भवन का उल्लेख बंदगीशाह के नाम से किया गया है, सबरहद में उसके अतिरिक्त दूसरी कोई इमारत ऐसी नहीं मिलती है। जिस इमारत की नसीरूदूदीन की दरगाह मुख्य रूप में पुष्टि की जा सके।

ऐतिहासिक ग्रंथों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सैय्यद मोहम्मद जौनपुरी जो महदवी शाखा के संस्थापक थे, उनको शिष्य परंपरा में बंदगीशाहश शब्द नाम के पूर्व जोड़न की परंपरा थी। उदाहरणार्थ बंदगीशाह सैय्यद् खानमीर, बंदगीशाह नेमत, बंदगीशाह निजम, बंदगीशाह दिलावर आदि। इन लोगों को सैय्यद मोहम्मद जौनपुरी के उत्तराधिकार में वही स्थान प्राप्त था जो हजरत मुहम्मद के बाद हजरत अबूबक्र, हजरत उमर, हजरत उस्मान और हजरत अली को प्राप्त था।५

इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बंदगीशाह नाम से प्रसिद्ध इमारत महदवी परंपरा के किसी सूफो साधक की है। संभव है कि उसका ही नाम नसीरूदूदीन रहा हो और वह इमारत किसी समय में दरगाह अथवा महदवी परंपरा के सूफ्यिों द्वारा प्रयुक्त होती रही हा। आगे चलकर महदबवी परंपरा के सूकियों द्वारा प्रयुक्त होती रही हो। आगे चलकर महदवी परंपरा के हास के साथ नसीरूदूदीन नाम विलुप्त हो गया हो और केवल बंदगीशाह नाम से उस भवन की चर्चा होती रही हो। इस इमारत की स्थिति मस्जिद से भिन्न नहीं थी। इसलिए अनुमान के आधार पर बंदगीशाह को नूर मोहम्मद द्वारा चर्चित कैलाश के समान पवित्र नसीरूददीन शाह का स्थान स्वीकार किया जा सकता है। किंतु किसी प्रामाणिक आधार के बिना इसे अंतिम नहीं ठहराया जा सकता है। डॉ. सरला शुक्ल ने काब्जी नसीरूदृदीन जायसी को, जिन्हें अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सदन मिली थी। नूर मोहम्मद द्वारा चर्चित नसीरूदूदीन होने का शक जाहिर किया है।६ किंतु इस अनुमान के पीछे कोईभी प्रमाण नहीं है। श्री कन्हैया सिंह ने काजी नसीरूदूदीन और नूर मोहम्मद के समकालीन होने के कारण यह संभावना व्यक्त की है कि संभवतरू दोनों एक ही हों।७

आचार्य चंद्रबंली पाण्डेय ने नूर मोहम्मद के वंशज मौलबी फिदा हुसैन के भादों में होने की चर्चा भी की है। आचार्य चंद्रबली पाण्डेय की यह सामग्री भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल से ली गयी प्रतीत होती है।८ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सबरहद को अत्यंत शांतिदायक स्थल बताया है। कवि नूर मोहम्मद ने सबरहद का स्मरण जिन शब्दों में किया है उससे निश्चय ही यह सिद्ध होता है कि सबरहद एक पवित्र स्थान है। सबरहद में जो इमामबाड़े की इमारत बनी हुई वह वहाँ के मुसलमानों की आस्था को रेखांकित करती है।

इमामबाड़ा हजरत इमाम हुसैन के कर्बला स्थित मकबरे का प्रतीक है। इससे यह जाहिर होता है कि सबरहदवासियों के मन में हजरत इमाम हुसैन के प्रति अपार श्रद्धा थी। इजरत इमाम हुसैन के प्रति श्रद्धा किसी विशेष संप्रदाय (शिया) की जागीर नहीं है। भारत के अधिकांश इमामबाड़े सुन्नी मुसलमानों द्वारा निर्मित है।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

नूर मोहम्मद भी हजरत इमाम हुसैन के प्रति अपार श्रद्धा रखते थे इसका संकेत उनकी कृतियों में स्पष्ट मिलता है। कर्बला और हजरत
इमाम हुसैन के प्रति श्रद्धा भाव और आस्था के चलते आचार्य चंद्रबली पाण्डेय ने उनका शिया मुसलमान होना स्वीकार किया है,६ परंतु कर्बला और हजरत इमाम हुसैन के प्रति सुन्नियों के अंदर भी श्रद्धा भाव शियाओं से कम नहीं होता है। अतः चंद्रबली पाण्डेय के उक्त कथन के आधार पर नूर मोहम्मद को शिया मुसलमान नहीं ठहराया जा सकता लेकिन चंद्रबली पाण्डेय के विचारों का अनुकरण करके विद्वजनों ने उन्हें शिया मान लिया और फिर उन्हें शिया मानने की एक परंपरा चल पड़ी।
सुन्नी आस्था के मुसलमान भी पंजतन पाक (हजरत मुहम्मद ", हजरत अली, बीबी फातिमा, हजरत हसन, हजरत हुसैन) को विशेष श्रद्धा के साथ प्रेम करना अपना धर्म समझते हैं। कर्बला की बार–बार चर्चा करना और हजरत अली के प्रति अगाध प्रेम तथा पंचतन पाक से दिली उन्सियत इस बात का सुबूत नहीं कि नूर मोहम्मद शिया आस्था के मुसलमान थे। एक और तथ्य यह सिद्ध करता है कि नूर मोहम्मद चारों खलीफाओं (हजरत अबूबक्र, हजरत उमर, हजरत उस्मान और हजरत अली) के प्रति आदर भाव रखते थे जबकि शिया आस्था के मुसलमान चारों खलीफाओं के प्रति ऐसा आदर भाव नहीं रखते। जैसा कि नूर मोहम्मद ने व्यक्त किया है।

"चार यार चारिउ जस तारे,
दीन गगन ऊपर उजियारे।
अबू बकर औ उमर बखानौ,
उस्मां बहुरि अली कह जानौ॥।१०

इसके अलावा नूर मोहम्मद के फारसी दीवान में हजरत अब्दुल कादिर जीलानी (सन ११३४–१२२३ई.) की तारीफ में एक लंबा कसीदा (प्रशस्ति काव्य) भी उपलब्ध है। हजरत अब्दुल क़ादिर जीलानी सूफियों के क़ादिरी शाखा के संस्थापक माने जाते हैं और सुन्नी आस्था के मुसलमानों में सामान्य रूप से तथा क़ादिरी संप्रदाय के विशेष रूप से उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।
सामान्य मुस्लिम लोगों में उन्हें बड़े पीर साहब के नाम से भी जाना जाता है। क़ादरी संप्रदाय में उनका नाम लेने के स्थान पर उन्हें गौसे आजम (दैवीय सहायक), मुहीउद्दीन (आस्थाओं के पुनर्जीवित करनेवाला), हाजी–उल–हस्मैन (चित्त के अंदर अनेक काबों का हज करने वाला), सदर दीन (ईमान का वक्ष स्थल) और महबूबे हक़ (ईश्वर का प्रियतम) आदि उपाधि से याद किया जाता है। नूर मोहम्मद ने अब्दुल कादिर जीलानी के लिए उपर्युक्त सभी उपाधियों का प्रयोग अत्यधिक श्रद्धापूर्वक किया है और उनसे याचना की है–

"यक नजर कर मा बरीं नूरे मुहम्मद अज करम,
ता शवद दर हर दो आलम सरफराजो कामयाब।
गौसे–आजम हस्तीए महबूबे हक फरयाद रस,
आलम ए खा हन्द अज दरगाहे तो हुस्नलमआब।॥। ११

"अर्थात ऐ गौसे आजम! आप की हस्ती ईश्वर के प्रियतम की है और आप हर विनती करने वाले की पुकार सुनते हैं। सारी दुनिया आपकी दरगाह से सौंदर्य तत्त्व प्राप्त करने की इच्छुक रहती है। आप कृपया इस नूर मोहम्मद पर भी एक दृष्टि डालें जिससे वह लोक और परलोक में सिर उठाकर चल सके और कामयाबी हासिल कर सके।श्श इतना ही नहीं, नूर मोहम्मद ने अपने फारसी दीवान में यह इच्छा भी व्यक्त की है–

"सूए–दरगाहे–हाजिउल हरमैन।
इश्तियाक़म न इनकेसार बुरीद।। १२

अर्थात 'हे चित्त के अंदर अनेक काबों का हज करने वाले! हार्दिक इच्छा आपकी दरगाह में मुझ अिकचन को दफनाया जाए।'' स्पष्ट है कि नूर मोहम्मद आस्थाओं की दृष्टि से कादिरी संप्रदाय में दीक्षित सुन्नी मुसलमान थे। कारण यह है कि शिया आस्था के मुसलमानों में अब्दुल क़ादिर जीलानी के प्रति कोई श्रद्धा भाव नहीं पाया जाता। सबरहद के मुसलमानों की आबादी से भी इसी मत की पुष्टि होती है। नूर मोहम्मद एक सहिष्णु एवं सिद्धांत प्रिय मुस्लिम सूफी थे। वे अल्लाह के इश्क में पूरी तरह डूबे थे और अल्लाह के समक्ष अपन को 'हिंदू'अर्थात सेवक या मुक्त होने पर गर्व करते थे।

"हस्त हिंदूए तौ बासद आरजू ई कामयाब।
शाहे खूबां कुन करम, वर हाले हिंदूए अजब।।श १३

अर्थात "ऐ सौंदर्यशील स्वामी। श्कामयाबश (नूर मोहम्मद) सैकड़ों श्इच्छाओंश के साथ तुम्हारा हिंदू अर्थात भक्त हो गया है। अपने इस विचित्र हिंदू पर कृपा कीजिए।'' उपर्युक्त विचारों वाले कवि नूर मोहम्मद को कट्टर और सांप्रदायिक मुसलमान ठहराना कदापि उचित नहीं है।

अध्याय–एक

सूफी चिंतन य परंपरा एवं विकास

विश्व ब्रह्माण्ड में जितनी भी वस्तुएं हैं उनके आविर्भाव का कोई न कोई उद्देश्य है। सभी इन उद्देश्यों की पूर्ति में तत्पर हैं। दुनिया केसभी श्रेष्ठ पदार्थों में मानव की रचना सर्वश्रेष्ठ है। मानव ही दुनिया का ऐसा प्राणी है जिसमें निर्णय लेने की क्षमता है। स्वविवेक से कार्य करने का सामर्थ्य है और उसकी अपनी स्वतंत्र इच्छा शक्ति है। वह विवेक ज्ञान से युक्त है इसलिए वह चिंतन कर सकता है और जिन–जिन वस्तुओं पर उसकी दृष्टि जाती है उन्हें वह केवल भोग्य दृष्टि से ही न देखकर ज्ञान दृष्टि से भी देखना चाहता है। यह चिंतन ही उसके अंदर प्रश्न प्रतिप्रश्न पैदा करता रहता है। मानव प्रश्न करता है कि यह समस्त जगत कहाँ से पैदा हुआ ? जगत की सर्जना का प्रयोजन क्या है? इस जगत का सर्जक कौन है? इस सृष्टि प्रक्रिया में मानव का कितना और कैसा योगदान है?
दुनिया में जितनी मानव जातियाँ है सबमें चिंतन की यह प्रक्रिया प्रारंभ हुई और भाषा तथा संस्कृति की भिन्नता के परिप्रेक्ष्य में उनके चिंतनों का उद्भव और विकास हुआ। इस्लाम धर्म में यह चिंतन ही सूफो चिंतन कहलाया। तसव्बुफ अथवा सूफी मत क्या है? सूफो कौन

है और इस समस्या का समाधान जितना कठिन आज है उतना ही १०वीं सदी ई. के अंत में था। १०वीं सदी ई. के बाद सूफो मत की लोकप्रियता और सूफ्रियों में लोक तथा परलोक के प्रति दृष्टिकोण की विभिन्नता के कारण यह प्रश्न और भी जटिल हो गया।

सूफी मत के विषय में प्राचीनतम उपलब्ध पुस्तक अबूनस–अल–सर्राज–अल–तूसी (मृ.९८८ ई.) की "किताब अल लुमाश है। दूसरा ग्रंथ अब्दुरहमान अल–सुलमी (मृ. १०२२ ई.) का है। इसका नाम तबकातुस्सूफियाश है। अबुल कासिम अल कुरैशी (मृ. १०७२ ई.) ने सूफी मत के सिद्धांतों एवं मुख्य सूफियों के विषय में अनेक पुस्तकों की रचना की। इन महानुभवों के दर्शाये हुए मार्ग पर चलकर अबू इस्माईल अब्दुल्ला इरबी अंसारी (मृ. १०८४ ई.) और हुजबेरी (मृ. १०८६ ई.) ने सूफो मत के सिद्धांतों एवं इतिहास पर पुस्तके लिखीं। अब्दुल्लाह अंसारी ने अल सुलमी को अनुकरण करते हुए 'तबआतुस्सूफिया' नामक ग्रंथ की फारसी में रचना की। हुजवेरी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "कश्फुल महजूब'' की सामग्री उस समय तक के समस्त उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर व्यवस्थित की और सुलमी, कुशैरी तथा अब्दुल्लाह अंसारी की

रचनाओं का विशेष रूप से उपयोग किया। सभी विद्वानों ने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि तसव्वुफ एक बहुत प्राचीन मत है और इसके प्रवर्तन का श्रेय हजरत मुहम्मद ' (मृ. ६३२ ई.) उनके साथियों, सहयोगियों एवं उनके बाद आने वाली संतान रूपी महापुरुषों को प्राप्त है।

सूफी शब्द की उत्पत्तिः

सर्राज का कथन है कि सूफी शब्द का प्रयोग इस्लाम से पूर्व भी आदरणीय व्यक्तियों के लिए किया जाता था। शामी जाति के पैगंबर एवं संत मोटे ऊनी वस्त्र धारण किया करते थे। अरब की प्रथा है कि लोगों को संबोधित करने के लिए उन्हें उन बस्त्रों के अनुसार जो वे धारण करते हैं, पुकारा जाता है। कुरआन में हजरत ईसा के साथियों को ''हब्वारीयून'' कहने का कारण यह है कि वे श्वेत वस्त्र धारण करते थे।

कुरआन के एक सूर (अध्याय) में हजरत मुहम्मद ' को हे कमली ओढ़ने वाले' कहकर संबोधित किया गया है।? कुरआन में ऐसे अनेकवाक्य हैं जिनकी व्याख्या द्वारा सूफियों के मत की पुष्टि होती है। हजरत मुहम्मद ' के जीवन की बहुत सी घटनाएं और उनके बहुत से प्रवचन "हदीस'' सूफी सिद्धांत की आधारभूत सामग्री बन गये है। हजरत मुहम्मद " के कुछ सहाबा 'साथी' सदैव मस्जिद मं ही निवास करते, इबादत में तल्लीन रहते और संसार से कोई मतलब न रखते थे। उन्हें जीविकोपार्जज की भी चिंता न थी। हजरत मुहम्मद " उनके जीवन से अत्यधिक प्रभावित थे। ये लोग अहले सुफ्फा कहलाते थे।३ कुछ विद्वानों का मत है कि प्रारंभिक सूफी यही लोग थे।४

सूफी शब्द की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। अली हुजवेरी श्सूफीश शब्द की उत्पत्ति सफा शब्द से मानते हैं।५ इस धारा के विद्वानों के अनुसार सूफी अपने मन को सांसारिक मायामोह और छलकपट से साफ रखता है। सूफियों का विश्वास है कि परमात्मा की छाया मन के दर्पण पर तभी पड़ेगी जब वह संसार के मायामोह से अपने को साफ रखेगा। इस कथन का समर्थन श्री ए. जे. अरबेरी ने निम्न शब्दों में किया है। तसव्बुफ की निरूत्पत्ति अलकुशैरी के अनुसार सफा शब्द से हुई है जिसका अर्थ शुद्ध होना है और इसका संबंध श्सूफश वस्त्र से नहीं है।६ शेख फरीदुद्दीन अत्तार अपनी पुस्तक तजकरतुल औलियाश में सूफो शब्द की उत्पत्ति सफाश से स्वीकार करते हैं। परंतु व्याकरण के नियमों के अनुसार यह व्युत्पत्ति ठीक नहीं है। क्योंकि सूफी और सफा की धातुएं भिन्न–भिन्न है। सफा की धातु सफ्ब और सूफी की धातु सृफ है। कुछ विद्वान सूफो शब्द का संबंध असहाबे सुफ्फा से जोड़ते हैं। मदीने में हजरत मुहम्मद श' की बनाई हुई मस्जिद के पास छप्पर पड़ा था।

उसके नीचे कुछ मुसलमान त्यागमय जीवन बिताते थे और संसार के आकर्षण से दूर रहकर एक चबूतरे पर पड़े रहते थे। ये बैरगी लोग असहाबे सुफ्फा कहलाते थे। आगे चलकर सूफियों का रहन–सहन असहाबे सुफ्फा जैसा था अतएब उन्हें सूफी कहा जाने लगा।७ कुछ विद्वान सूफो शब्द की उत्पत्ति सफ पंक्ति से मानते हैं पर इस विचार के समर्थकों का मत है कि अपने अच्छे आचरण और पवित्र जीवन बिताने के कारण कयामत के दिन जो लोग अल्लाह के सामने एक विशेष पंक्ति में खड़े होंगे, उन्हें संसार में सूफी की संज्ञा दी गयी है। पूर्ववर्णित तीनों मतों का खण्डन प्रसिद्ध विद्वान एवं सूफी संत गजाली ने किया। उनका विचार है कि व्याकरण के नियमों के अनुसार श्सफश से सूफी शब्द की रचना हो ही नहीं सकती। इस्लाम का विश्वकोष इसी कथन की पुष्टि करता है कि सफा शब्द से सूफी शब्द की उत्पत्ति व्याकरण के नियमों के प्रतिकूल है। सूफी शब्द की उत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि यह ग्रीक शब्द सोफास से निकला है जिसका अर्थ बुद्धिमान है। क्योंकि सूफियों के बहुत से विचार यूनानी दार्शनिकों जैसे पाये जाते हैं। इसलिए सोफास के संबंध से उन्हें सूफी कहा गया। प्रोफेसर के. हित्ती ने भी सूफी शब्द की उत्पत्ति सोफास से मानी है।

मौलाना शिबली का कथन है कि तसव्बुफ शब्द वास्तव में फारसी के सीन अक्षर से था। इसकी धातु सौफ थी जिसका अर्थ यूनानी भाषा में बुद्धिमत्ता है। दूसरी शताब्दी हिजरी में जब यूनानी पुस्तकों का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ तब यह शब्द अरबी भाषा में आया। कुछ विद्वानों के जीवन बिताने का ढंग यूनानी दार्शनिकों जैसा था इसलिए इन्हें सूोफी कहा गया। उस समय तक अरबी भाषा में सूफा शब्द सीन अक्षर से लिया जाता था। धीरे–धीरे इस शब्द को सुआद अक्षर से लिखा जाने लगा। अलबूनी ने भी इसी विचार को माना है।८

उपर्युक्त विचारों का खण्डन प्रो. नोएल विके ने किया है। उनका विचार है कि यूनानी शब्द अरबी भाषा में सिरयानी भाषा के माध्यम से आये हैं परंतु सूफी शब्द सिरयानी भाषा में मौजूद नहीं है फिर अरबी भाषा में कहां से आ गया। यदि थोड़ी देर के लिए मान भी

लिया जाए कि किसी न किसी प्रकार यह शब्द अरबी भाषा में आ गया तो इसका इमला सीन अक्षर के स्थान पर सुआद अक्षर से कैसे हो गया। संभव है किइस कथन की पुष्टि में यह कहा जाए कि जो शब्द सिस्यानी भाषा से अरबी भाषा में आये उन्हें सीन अक्षर के स्थान पर सुआद अक्षर से करदिया गया परंतु इस परिवर्तन के लिए कुछ नियम निर्धारित है और यह शब्द इस नियम के अंतर्गत नहीं आता।

सूफी शब्द की उत्पत्ति सुफना नाम की घास से बताई जाती है जो सूखी सी होती है। सूफो अपने शरीर को ईश्वर की साधना औरवियोग में इस प्रकार सुखा लेता है जिस प्रकार सुफना घास। प्रसिद्ध सूफो साधक शेख़ शहाबुदूदीन सुहारवर्दी (मृ. ६३२ हि.) अवारिफुल मवारिफ में लिखते हैं– "पूरब से पश्चिम तक इस्लामी देशों के दोनों किनारों में सान्निध्य प्राप्त किए हुए लोगों के लिए प्रसिद्ध है जो विशेष प्रकार का पहनावा पहनते हैं। पश्चिमी भागों तुर्किस्तान और पूर्वी भागों में बहुत से अल्लाह के मुकर्रब सान्निध्य प्राप्त बंदे हैं लेकिन वे सूफी नाम से नहीं जाने जाते क्योंकि वे सूफियों का विशेष पहनावा नहीं पहनते। इससे मालूम हुआ कि सूफी से हमारा तात्पर्य मुकर्रब ही है।६

सूफी शब्द का प्रयोग दूसरी हिजरी शताब्दी के अंत में शुरू हुआ है, इससे पहले सूफियों के लिए उपरोक्त कुरआनी शब्द प्रयुक्त होता था।१० शेख़ शहाबुद्दीन सुहारबर्दी के इन कथनों से यह बात स्पष्ट होता है कि ऊनी पहनावा सूफियों की आम पहचान बन गया था। ऐसा शायद वे इस लिए करते थे कि इससे दुनिया से बेताल्लुकी, विनम्रता और अहं को नष्ट करने का भाव जन्म लेता था। इसलिए उन्हें सूफी कहा जाने लगा। ब्राउन सूफी शब्द की उत्पत्ति सूफ से मानते हैं और उसकी पुष्टि में कहते हैं कि फारसी में सूफियों को पश्मीना पोश ऊन पहनने वाला कहा जाता है जो अरबी शब्द सूफी का पर्याय है।११ इसी क्रम में कुछ विद्वानों ने सूफाह शब्द से तो कुछ ने बनू सूफा नामक एक घुमक्कड़ जाति के सूफा नाम से इसका निकलना स्वीकारा ह। इसी तरह ग्रीक शब्द सोफिस्ता से सूफी और थियोसाफिया शब्द से तसव्बुफ की व्युत्पत्ति करने की चेष्टा की गयी है लेकिन ये शब्द संगित बिठाने की कोशिश हैं।१२

सही बात यही है कि सूफो शब्द सूफ से निकला है। लगभग यही बाते सूफी शब्द के व्युत्पत्ति के विषय से संबंधित श्री चंद्रबली पाण्डेय ने भी लिखी है और अंत में सूफ शब्द से उसके बनने का समर्थन भी किया है।१३ बहरहाल यह बात अपनी जगह पर सही है कि सूफी शब्द हजरत मुहम्मद ' के समय में बिल्कुल ही प्रचलित नहीं था। कहा जाता है कि इसका चलन ताबईन, मुहम्मद ' के साथियों के बाद के लोगों के समय में शुरू हुआ। हजरत हसन बसरी के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने एक व्यक्ति को काबे की परिक्रमा करते हुए देखकर कहा कि यह सूफी है और फिर से कुछ देना चाहा तो उसने नहीं लिया।१४ इमाम कुशैरी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक के अध्याय तसवब्बुफ में लिखते हैं कि मैने अब्दुल्लाह तमीमी को कहते हुए सुना है कि अबू मुहम्मद जरीरी से तसव्बुफ के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि तसव्बुफ हर श्रेष्ठ चरित्र में दाखिल होने और निम्न चरित्र से निकलने का दूसरा नाम है। अम्र बिन उस्मान मक्की रह. से तसव्बुफ के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा तसव्बुफ यह है कि बंदा हर वक्त उसी नाम में लगा हुआ हो जो अल्लाह यह है कि बंदा हर वक्त उसी नाम में लगा हुआ हो जो अल्लाह के नजदीक उस समय के लिए सर्वश्रेष्ठ और यथोचित हो।१५ प्रसिद्ध साधक मारूफ कर्खी का कहना है कि तसव्वुफ यह है कि अरबी सच्चाइयों को अपनाए और दनिया वालों के पास जो कुछ है उनसे निराशा हो जाए।१६

एक बार हजरत जुनैद बगदादी रह. ने कहा "तसव्वुफ इज्तिमाअ के साथ जिक्र इस्तिमाअ के साथ बज्द ओ इत्तिबाअ के साथ अमल का नाम। १७ टीकाकारों ने इस वाक्य को ठीक से लिखा है कि इज्तिमाअ से तात्पर्य धैर्य का योग है। इज्तिमाअ के साथ जिक्र का अर्थ यह है कि ईश्वर का स्मरण पूर्ण एकाग्रता और निष्ठा के साथ किया जाए। वज्द तसव्बुफ में प्रेम के आधिक्य को कहते हैं। इस्तिमाअ से तात्पर्य किसी ऐसी चीज का सुनना है जो वज्द को आंदोलित करे। इस्तिमाअ के साथ बज्द का अर्थ हुआ कि प्रभावपूर्ण उद्देश्यों या अच्छी बातों को सुनकर अपने ईश प्रेम को आगे बढ़ायें। इत्तिबाअ पालन को कहते है। अर्थात सुनत के पालन के बिना अमल संभव नहीं है।१८ साधक अबूबक्र कत्तानी का कथन है कि तसव्बुफ श्रेष्ठ चरित्र से सुसज्जित होने का नाम है। जो व्यक्ति तुम से चरित्र में बढ़ा हुआ ह वह तुम से दिल की पाकी और तसव्बुफ में बढ़ा हुआ है।१९

सूफी चिंतन की पृष्ठभूमि

हजरत मुहम्मद ' के सम सामयिक एक महात्मा उबैस करनी थे जो कभी हजरत की सेवा में उपस्थित न हो सके किंतु हजरत अपने साथियों से उनको चर्चा करते रहते थे। लोग उबैस को पागल समझते थे किंतु वे अल्लाह के ध्याम में मगन और अपनी माता की सेवा में तल्लीन करते थे। वे कहा करते थे कि एकांत में ही शक्ति है। एकांतवासी का हृदय अन्य चिंताओं से मुक्त हो जाता है।२० सभी सूफी उवैस करनी को अपना नेता मानते है और उनके त्याग तथा तपस्या को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। ६३२ ई. में हजरत मुहम्मद ' का निधन हो गया। उनके प्रथम खलीफा उत्तराधिकारीश हजरत अबूबक्र ६३२–६३४ ई. हजरत मुहम्मद ' के प्रति निष्ठा एवं न्याय के लिए बड़े सुप्रसिद्ध थे। सूफियों के नक्शबंदी संप्रदाय में आस्था रखने वालों को मत है कि उनके पंथ के प्रवतक हजरत अबूबक्र थे। सूफोजन हजरत मुहम्मद ' के बाद के चारों २६ खलीफाओं का एक समान आदर करते हैं। किंतु अधिकांश सूफी अपनी साधना का नेता हजरत अली (६५०६–६६० ई.) कोमानते हैं। जिन लोगों ने आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन किया उनमें हजरत अली सर्वश्रेष्ठ थे। व सूफी मार्ग तरीकत के पथ प्रदर्शक थे। समस्त सूफी उन्हें अपना शेख गुरु मानते हैं। सूफी सिद्धांतों पर आधारित शिक्षा है "अपने परिवार को अपनी चिंताओं का मुख्य विषय

मत बनाओ। यदि वे ईश्वर के मित्र हैं तो वह स्वयं उनकी देखभाल करेगा, यदि वे उसके शत्रु हैं तो तम ईश्वर के शत्रुओं की चिंता क्यों करो ? २२ हजरत अली की संतान में उनके दोनों पुत्रों हसन (मृ. ६६९ ई.) और हजरत हुसैन (मृ. ६८० ई.) हजरत हुसैन के पुत्र जैनुल आबिदीन,हजरत जैनुल आबिदीन के पुत्र मुहम्मद अल बाकिर और मुहम्मद अल बाकिर के पुत्र हजरत जाफरे–सादिक (मृ. ७६५ ई.) को सूफी लोगअपना आध्यात्मिक पथ–प्रदर्शक मानते हैं। कहा जाता है कि हजरत जाफरे सादिक ने सूफी सिद्धांतों का निरूपण करते हुए अनेक ग्रंथों कीरचना को थी। जो सूफी अपना संबंध हजरत अली से जोड़ते हैं उनके बीच की मुख्य कड़ी हसन बसरी (मृ. ७२८) हैं। वे अपने समय के बहुतबड़े विद्वान एवं सम्मानित व्यक्ति थे। हजरत मुहम्मद " के एक मुख्य सहाबी साथी अबूजर गिफारी को भी सूफियों में बड़ा सम्मान प्राप्त है।यद्यपि इस्लाम के प्रथम २०० वर्षों में अनेक ऐसे त्यागी, विरक्त एवं तपस्वी जीव हुए हैं जिन्होंने इस्लाम के हृदयपक्ष और रहस्यवाद को अपनी साधना द्वारा सबल बनाया है किंतु सूफी शब्द का प्रयोग उनके लिए नहीं किया जाता। इस आंदोलन को प्रसिद्धि ८वीं सदी ई. के अंत में ही प्राप्त हुई। अब्दुल्लाह हरबी अंसारी के मतानुसार सर्वप्रथम जो महात्मा सूफी के नाम से विख्यात हुए वे कूफे के निवासी अबू हाशिम थ। वे सन ७७७–७७८ तक जीवित रहे।२३ फिर क्या कारण है कि इस्लाम के प्रथम २०० वर्षों के महात्माओं के सूफी नहीं कहा जाता था इसका उत्तर इमाम कुशैरी ने इस प्रकार दिया– हजरत मुहम्मद " के बाद मुसलमानों के लिए सहाबा साथी के अतिरिक्त कोई उपाधि श्रेष्ठ नहीं हो सकती थी। हजरत मुहम्मद " के साथी होने का श्रेय इतना अधिक था कि इससे बड़े सम्मान की कल्पना नहीं की जा सकती थी। सहाबा के साथी ताबिईन कहलाए। उसके बाद के लोग ताबए–ताबिईन की उपाधि द्वारा विख्यात हुए। तदुपरांत अन्य श्रेणियां होने लगीं। जिन महापुरुषों का झुकाव धर्म के प्रति अधिक होता था उनको जाहिद संयमी और आबिद तपस्वी कहा जाता था। जब इस्लाम में नए–नए मार्ग निकलने लगे और विभिन्न समूह उत्पन्न होने लगे तो हर समूह वाला यही दावा करता था कि संयमी पुरुष उनमें ही पाये जाते है। अतः सुन्नियों में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति तसव्वुफ के नाम स विख्यात हुए। दूसरी सदी हि. से पूर्व ये बुजुर्ग इस नाम से प्रसिद्ध हुए।२४

सूफी चिंतन रू उद्‌भव एवं विकास :

इस्लाम के सभी धार्मिक आंदोलनों के पीछे राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारण निहित हैं। हजरत मुहम्मद ' के निधन के पश्चात अरब के बहरैन, ओमान, यमन एवं हजमौत नामक स्थानों पर विद्रोह की अगिक भड़क उठी थी। हजरत अबूबक्र ने बड़ी तत्परता से इन्हें दबाया और इस्लामी साप्राज्य की नींव डाली। हजरत उमर के राज्यपाल के अंत तक सीरिया शाम, ईराक, ईरान, मिस्र, त्रिपोली, बरका अरबों ने विजयाधीन कर लिया था। हजरत उमर के समय में ही इस विशाल साप्राज्य के शासन प्रबंध की रूप रेखा तैयार हुई। हजरत उस्मान के राज्य के प्रथम ६ साल सफलतापूर्बक व्यतीत हुए किंतु बाद में अरबों के मुख्य कबीलों के पारस्परिक झगड़े की अग्नि जो अभी तक दबी थी प्रज्ज्वलित हो उठी। इस्लाम की राजनैतिक और उसके साथ–साथ सामाजिक एकता का भी अंत हो गया। हजरत उस्मान राजनीतिक आंदोलन दबाने में असफल रहे और उन्हें अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। हजरत अली के अपने राज्यकाल के पांच वर्षों में अपने शत्रुओं से तीन बड़े युद्ध करने पड़े। अंत में ६६१ ई. में वे शहीद हो गये।

राज्य उमइया वंश को प्राप्त हो गया। यह लोग प्रारंभ में हजरत मुहम्मद " के कबीले के घोर शत्रु थे। इन्होंने अपनी राजधानी दमिश्क में बनाई। मुसलमान दो बड़े दलों में विभकत हो गये। हजरत अली के सहायक शिया कहलाये। इनका मत है कि हजरत अली को ही हजरत मुहम्मद ' का उत्तराधिकारी होना चाहिए था। यह मत हजरत अली की शहादत के बाद उग्र रूप धारण करने लगा। सन ६८० ई. में हजरत अली के पुत्र हजरत हुसैन को तत्कालीन उमइया खलीफा यजीद ने कर्बला ईराक में शहीद कर दिया। उस समय हजरत हुसैन के केवल ७२ सहायक थे। इस घटना के कारण हजरत अली के सहायकों को उमइया वंश के विरुद्ध आंदोलन चलाने में बड़ी सहायता मिली। उमइया वंश केही राज्यकाल में सन७११–१२ ई. में अरबों ने सिंध पर विजय प्राप्त की। सन ७०५ ई., और ७१५ ई. के मध्य में बल्ख, बुखारा, समरकन्द विजयाधीन हुए। यह स्थान बौद्ध मत के मुख्य केंद्र बन चुके थे और अपने विचारों के लिए बड़े प्रसिद्ध थे। ७१५ ई. में चीनी तुर्किस्तान के काश्गर नगर पर भी विजय पताका फहराई गई। किंतु उमइया वंश का विद्रोह बंद नहीं हुआ। सन ७५० ई. अब्बासी वंश का राज्य स्थापित हो गया। ये लोग हजरत मुहम्मद " के चाचा की संतान थे। हजरत अली के सहायकों ने इन्हें राज्य स्थापित करने में बड़ी सहायता दी थी किंतु इनको नए राज्य स्थापित करने में कोई लाभ प्राप्त न हुआ। अब्बासियों ने बगदाद को अपने राज्य की राजधानी बनाया। हारून रशीद सन ८–८०६ ई. और मामून रशीद (सन ८१३–८३३ई.) बड़े प्रसिद्ध अब्बासी खलीफा हुए। नौवीं सदी ई. के बाद इनका भी पतन प्रारंभ हो गया किंतु वे ३०० वर्ष तक किसी न किसी प्रकार राज्य करते रहे। १२५८ ई. में हलाकू मंगोल ने अब्बासी वंश का अंत कर बगदाद को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। हजरत उमर के समय में तत्कालीन सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बसरा और कूफा नामक दो मुख्य नगर बसाए गये। बगदाद से ३०० मील दक्षिण पूर्व स्थित बसरा बहुत बड़ा व्यापारिक केंद्र बन गया। उमइया वंश वाले यहीं से खुरासान पर राज्य करते थे। प्रारंभ से ही पूर्व के देशों की विभिन्न संस्कृतियों का मेल जोल बसरा में होने लगा और यहां अरबों के बौद्धिक और धार्मिक आंदोलन का केंद्र बना ईराक में बेबीलोन के दक्षिण में कूफा था। यहाँ भी अरब सैनिकों के कबीले शिल्पकार व्यापारी एवं ईरानी नस्ल के लोग रहने लगे। दोनों ही नगर ईराक एवं ईरान की प्राचीन संस्कृति से अत्याधिक प्रभावित हुआ। ईरान और मध्य

एशिया के जरतश्ती एवं बौद्ध विचारधाराओं का संघर्ष बसरा में होने लगा।

भारत के ज्ञान मीमांसा और कर्म मीमांसा की छाप बसरा पर पड़ी। दमिश्क में सभी जातियों के गुह्य समाज एवं मसीही संघ इस्लाम की विचार धाराओं को प्रभावित करने लगे। यद्यपि मक्का मदीना इस्लाम के धार्मिक केंद्र बने रहे। किंतु इस्लाम के सांस्कृतिक, बौद्धिक और धार्मिक आंदोलन का विकास बसरा, कूफा, दमिश्क बगदाद काहिरा और अन्दलुस में हुआ। इस्लाम में मीमांसा का श्री गणेश कर्म तथा उसकेफल संबंधी प्रश्न को लेकर किया गया। एक समूह जबरिया का बना वे इस पर जोर देते थे कि अल्लाह ने मनुष्य का भाग्य निर्धारित कर दिया है वह जो कुछ करता है उसमें मनुष्य का कोई हाथ नहीं। दूसरा पक्ष कदर का समर्थक था उसका मत है कि मनुष्य अपने कर्म का स्वयं उत्तरदायी है वही उसका निर्माता है ईश्वर का कार्य न्याय है अंतः वे मनुष्य के उन कार्यों के लिए दण्ड नहीं दे सकता जो उसमें मनुष्य के किएपर अपनी ओर से लाद दिए हैं। मनुष्य के कर्म उसके स्वच्छंद निर्णय पर आधारित हैं। इस सिद्धांत के मुख्य प्रतिनिधित्व बासिल बिन अता (मृ. ८–४६ई.) थे। वे हसन बसरी के शिष्य थे किंतु बाद में अपने गुरु का परित्याग कर अपने मत का प्रचार बड़ी तत्परता से किया। कदर केसिद्धांतों ने ही मोतजिला आंदोलन का रूप धारण कर लिया। हजरत उस्मान और हजरत अली के राज्यकाल के गृह युद्ध ने इस मत के प्रचार में बड़ा योग दिया। मोती जला उमायिक वंश के शत्रु और अब्बासी वंश के समर्थक थे। अब्बासी राज्यकाल के प्रारंभिक सौ वर्षों में मोतीजला को राज शासन में पूर्व प्रभुत्व रहा। बुद्धिवादी होने के बावजूद इन लोगों ने अपने प्रभुत्व काल में धार्मिक संकीर्णता प्रदर्शित की और अपने विरोधी मुसलमानों पर घोर अत्याचार किया। मोतीजला बड़े कट्टर एकेश्वरवादी थे। अल्लाह के विषय में कुरान जो रूपक प्रस्तुत करता है, उससे वह सगुण और सत्ता भी बन जाता है। मोतीजला ने इन सब अर्थ का निराकरण किया। उसके गुण न तो वह है और न तो वह के अतिरिकत। अल्लाह किसी स्थल विशेष का निवासी नहीं वह सर्वविद्यमान संचालक है। अल्लाह अनादि सत्ता है। उसने मखलूक जीव को पैदा किया है। अल्लाह जीव को संदूमार्ग पर देखना चाहता है। वह पाप का आदेश नहीं देता मनुष्य का कर्म उसके इच्छानुकूल निर्णय पर आधारित है।

मामून के समय तक यूनानी दार्शनिकों के साहित्य का बहुत बड़ा भण्डार अरबी में अनुदित हो गया था। इनके आधार पर मुसलमान दाशर्निकों को भौगोलिक ग्रंथों की रचना की। वे फेलसूफ अथवा फिलासफा बुद्धिजीवी कहे जाते हैं। इन लोगों ने अफलातून एवं अरस्तू से प्रेरणा प्राप्त की। अरस्तू का प्रभाव फिलासिफा पर सीधा पड़ा किंतु अफलातून का नव अफलातूनी मत द्वारा। इसके आधार पर फिलासफा जगत को दो वर्गों में विभक्त करने लगे। एक वह जगत जिसका इंद्रिय आभास कर सकती है। दूसरा वह जगत जिसका संबंध बुद्धि अथवा विवेक से है फिलासफा ने विचारों एवं बुद्धि के जगत के विषय में यह मत स्थापित किया कि उसका प्रभुत्व दिव्लोक पर है। मसऊदी नामक इतिहासकार का मत है कि अफलातन के समर्थक जिन समस्याओं का अध्ययन करते थे। उसमें से एक यह है कि जीवात्मा शरीर मे है अथवा शरीर जीवात्मा में। २५ जीवात्मा को सूफियों ने भी अपने तह –वितर्क का विषय बनाया। फिलासिफा ने बुद्धि और ज्ञान का सहारा दिया सूफियों ने प्रेम और भक्ति मार्ग को बनाया मौलिक दार्शनिकों में प्राचीनतम किन्दी है।२६ उसे मामून (८१३ से ८३३ ई.) एक मोतसिम (८३३–३४ ई.) के समय में अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई किंतु मुत्ावक्किल ८४७–८६१ ई. के समय में जबकि सुन्नी कट्टरता को पुनः उत्कर्ष मिला, किन्दी को अत्यधिक कष्ट उठाने पड़े। उसने यह सिद्धांत प्रस्तुत किया कि ब्रह्माण्ड के समय ऊपर से होता रहता है। ईश्वर एवं शरीर के जगत के मध्य में जीवात्मा का लोक है। मनुष्य की जीवात्मा उसी जीवात्मा के लोक का प्रतिबिंब हैं।२७ उसने अक्ल बुद्धि के महत्त्व पर बहुत जोर दिया। फराबी (मृ. ९५० ई.) जिसे मुस्लिम धार्मिक दूसरा अरस्तू मानते हैं। रहस्यवाद से अत्यधिक प्रभावित था। उसने रिसाला फी आरा अहल अल मदीना अल फाजिलाश में अफलातून के समान आदर्श नगर की रूपरेखा प्रस्तुत की उसने जगत को दो भागों में विभक्त बताया। सृष्टि का जगत और आदेश का जगत। उसने बताया कि पदार्थ अनेक मध्यस्थों से गुजरता हुआ ईश्वर द्वारा प्रकट हुआ है। जगत इसी पदार्थ से उत्पन्न हुआ है। शून्य से इसका सर्जन नहीं हुआ। दिव्य लोक किसी संचालक द्वारा गति ग्रहण करते हैं वह ईश्वर नहीं किंतु बुद्धि का आदि रूप है जिसकी रचना ईश्वर ने की है।

बू अली सीना (मृ. १०३६ ई.) ने अपने विचार बड़े निर्धारित एवं स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किए। उनका ग्रंथ 'किताब–अल–शफा' दर्शनशास्त्र का विश्वकोष माना जाता है। वह बुद्धि और विचार सामग्री अथवा मानस और प्रकृति में स्पष्ट रूप से भेदभाव करता है तथा जीवात्मा को अमर बताता है। ईश्वर में सत्ता और अस्तित्व का मिलन होता है। किंतु ईश्वर के अतिरिक्त सभी वस्तुओं में अस्तित्व सत्ता का गुण है। जगत अनंत तक रहेगा, कारण कि उसका श्रोत दैवीय है।

फिलासफा निरीश्वरवादी न थे किंतु आलिमो तथा सूफियों ने इनके ज्ञानवाद एवं बुद्धिवाद का घोर विरोध किया। इमाम गजाली ने "तोहाफूतुल फिलासफा" ग्रंथ में फपबी और इबके सीना की कटु आलोचना की किन्तु बाद में आलिम और सूफी इमाम गजाली (मृ. ११११ ई.) के आगे कुछ न सोच सके। इब्ने सीना को सौभाग्य से सुयोग्य टीटाकार मिलते गये। जो उसके सिद्धांतों का प्रचार कर इस्लाम में बुद्धि औरज्ञान की ज्योति जगाते रहे। इब्ने रूश्द (मृ. ११६८ ई.) ने श्तोहाफूतुल तहाफतश नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें इमाम गजाली की क्ाटु आलोचनाओं का विस्तार से उत्तर दिया।

ख्ावाजा नसीरूद्दीन तूसी (मृ. १२७४ ई.) ने इब्ने सीना के ग्रंथ की टीका श्अल–इशारात वल तम्बीहातश में लिखी। तूसी को ईरान के ईलख्ानी मंगोलों के दरबार में बड़ा सम्मान प्राप्त था। वहाँ उनकी विद्वता को

RRIJM 2015, All Rights Reserved

अत्यधिक यश प्राप्त हुआ और उनके ग्रंथों ने फारसी साहित्य तथा अन्य राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आंदोलनों को प्रभावित किया।

नव अफलातूनी मत तथा प्लेटिनस (मृ. २७० ई.) का भी प्रचार लगभग उसी समय हुआ जबकि फिलासफा अपनी भौतिक रचनाएं संकलित कर रहे थे। नव अफलातूनी मत पूर्व के धर्मों विशेषतरू जरतश्तियों से अत्यधिक प्रभावित है। भारतीयों में धार्मिक विचारों की भी छाप नव अफलातूनी मत पर दृष्टिगत होती है। नव अफलातूनियों का मत है कि जीवात्मा उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्तनशील रहती है। इस सिद्धांत को वे ब्रह्माण्ड की व्याख्या की कुंजी समझते हैं। परमानंद, बुद्धि एवं ज्ञान की परिधि से परे है। मनुष्य का जीवन न तो केवल रोटी पर निर्भर है और न ज्ञान पर जीवात्मा अपने आदर्श स्रोत से पृथक होकर अपने उस स्रोत से जो अनादि एवं अनंत है मिलने के लिए व्याकुल रहती है। नव अफलातूनी मत का पूर्ण विकास प्लेटिनस के रहस्यवाद में हुआ। परम तत्त्व दृश्यमान जगत का निर्माता है। किंतु आत्मा से भिन्न नहीं। अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ) या तत्त्व असि (वही तू है) या सो5ह (मैं वही हूँ) प्लेटिगस के मत को उतने ही सुंदर ढंग से व्यक्त करते हैं जितना कि उपनिषद के सत्य को उसका मत है कि आत्मा अभाज्य है वह एक है वह अनादि और अनंत है। सत्यम–शिवम–सुंदरम का संबंध आत्मा से है। एकाएकी सत्ता का आलोक भूलोक से लेकर नभमंडल तक है, अपितु कण–कण में है। समादि और प्रेममार्ग पर चलकर उस एकाएकी ज्योति का साक्षात्कार संभव है। यही प्लेटिनस का परम लक्ष्य है। सूफियों ने प्लेटिनस के रहस्यवाद को ग्रहण करके इस्लामी शरीयत के साथ उसका अदभुत समन्वय प्रस्तुत किया। इस्लाम का धार्मिक विधान शरीयत मुख्यतःरू कुरआन तथा हजरत मुहम्मद श के प्रवचन एवं आचरण पर आधारित है। प्रतिभाशाली मुसलमानों की सर्वसम्मति इजमा भी शरीयत के विकास में सहायक रही है। प्रारंभ में शरीयत की व्याख्या के लिए किसी विशेष प्रबुद्ध वर्ग की आवश्यकता न थी। जिन समस्याओं का समाधान शरीयत द्वारा न हो सकता था उनका निर्णय प्रतिभाशाली मुसलमान परिस्थितियों के अनुरूप अपने विवेक के प्रकाश में कर लेते थे। इसे इज्तेहाद कहते हैं। किंतु उमइया साम्राज्य की दिन प्रतिदिन विकसित होती हुई आवश्यकताओं ने मुसलमानों में एक ऐसी विद्व समूह को उत्पन्न किया जिसका व्यवसाय इस्लाम धर्म के धर्म विधान की व्याख्या करना हो गया था। वे लोग आलिम कहलाते थे और शासन के विभिन्न पदों विशेष रूप से न्याय विभाग के अधिकारी होते थे।

अब्बास राज्यकाल के प्रारंभ में सुन्नी धर्म विधान का क्रमबद्ध प्रतिपादन चार मुख्य विद्वानों ने किया। यह धर्म विधान के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमें से अबू हलीफा (मृ. ७६७ ई.) का मुख्य कार्यक्षेत्र कूका और बगदाद था। भारत, पाकिस्तान एवं मध्य एशिया के प्रायरू सुन्नी मुसलमान इन्हीं के धर्म विधान के अनुयायी हैं। मदीने में इमाम मालिक बिन अनस (मृ. ७६५ ई) के धर्म विधान को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इमाम शाफई (मृ. ८२० ई.) इमाम मालिक के शिष्य थे। पूर्वी पाकिस्तान तथा इण्डोनेशिया में इनके धर्म विधान को बड़ी मान्यता प्राप्त है। इमाम इब्ने हम्बल (मृ. ८५५ ई.) का कार्यक्षेत्र बगदाद था। जहाँ उन्हें मोतजिला के अत्याचारों के कारण अत्यधिक कष्ट भोगने पड़े। इन धर्म विधानों के अनुयायी क्रमशरू हन्फी, मालिकी, शाफई एवं हम्बली कहलाते हैं। इसके बाद सुन्नी मुसलमानों ने यह निर्णय लिया कि अन्य धर्म विधानों का अविष्कार न होगा। इज्तेहाद के द्वार बंद कर दिए गए। फलस्वरूप केवल इन्हीं चार धर्म विधानों पर टीका टिप्पणी होती रही। इस परिस्थिति में आलिमों को धर्म संबंधी पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिये गए। फलस्वरूप केवल इन्हीं चार धर्म विधानों पर टीका टिप्पणी होती रही। इस परिस्थिति में आलिमों को धर्म संबंधी पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिये गये। सूफियों को अपने मत प्रतिपादन में तीन मुखी मोर्चे का सामना करना पड़ा। एक ओर मोतजिला और फिलासफा। दूसरी ओर कठोर आलिम और तीसरी ओर सूफी मत के नाम पर पाखण्ड का प्रचार करने वाले एवं सूफियों की लोकप्रियता से गलत लाभ उठाने बाले।

हजरत मुहम्मद " के निधन के प्रथम डेढ़ दो सौ वर्षों के अंदर जिस प्रकार के सूफी मत का विकास हुआ। उसमें संसार त्याग इश्वर प्रेम, निष्काम, तपस्था और लोकसेवा का भाव प्रबल दीख पड़ता है। सूफी खानकाह का सर्वप्रथम निर्माण एक ईसाई हाकिम ने र्मला (सीरिया) में कराया। शेख अब्दुल्लाह अन्सारी ने विश्वस्त सूत्रों के आधार पर बताया कि इसका कारण यह था कि एक दिन एक ईसाई हाकिम शिकार खलने गया था। मार्ग में उसे दो सूफी मिले। उन्होंने एक दूसरे के प्रति अत्यधिक निष्ठा का प्रदर्शन किया। दोनों ने एक साथ भोजन किया और चल पड़े। ईसाई हाकिम ने इस दृश्य को देखा और बहुत प्रभावित हुआ तथा उनमें से एक को बुलाकर दूसरे के विष में पूछा, किंतु उसने अज्ञानता प्रदर्शित करते हुए बताया कि हम लोगों के पास कोई ऐसा स्थान भी नहीं है जहाँ वे एक दूसरे से मिल सकें तो उसने रमला में खानकाह का निर्माण कराया।२८ इस प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि प्रथम सूफी खानकाह शामी ईसाईयों के मठ के आधार पर जो बौद्ध विहारों से प्रभावित थे बनी। शेखअब्दुल्ला अन्सारी का कथन है कि मिस्र के जुन्नून (मृ. ८६० ई.) ने सूफी संकेतों की स्पष्ट व्याख्या की। बगदाद के जुनैद (मृ. ६११० ई.) ने सूफी साहित्य का संकलन किया और शिबली (मृ. ६४६ ई.) ने तसब्बुफ पर प्रवचन करने की प्रथा निकाली।२६ नवीं सदी के अंत तक सूफियों के विभिन्न संप्रदायों का पूर्ण विकास हो गया था।

सूफी चिंतन की परंपरा में ईमाम गजाली का बहुत बड़ा योगदान रहा। उन्होंने कुरआन की इस प्रकार व्याख्या की कि सूफी मत और इस्लाम में साम्य स्थापित हो गया। इमाम गजाली के प्रयत्नों से सूफी मत ने इस्लाम से हाथ मिलाया। बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान सूफी शेख अब्दुल कादिर जीलानी हैं। उन्हें भारत में बड़े पीर साहब के नाम से जाना जाता है। उनका जन्म सन १०७८ ई. में ईरान के जीलान नगर में हुआ। आपने

हम्बली सिद्धांत का अध्ययन किया। उन्होंने कादरिया संप्रदाय की स्थापना की। बारहवीं शताब्दी के एक और सूफी शहाबुद्दीन सुहारवर्दी थे। इनका जन्म सन ११४४ ई. में हुआ। इन्होंने अवारिफुल मवारिफ नामक ग्रंथ की रचना की तथा सुहारवर्दी संप्रदाय की स्थापना की। फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी शहाबुदूदीन सुहारवर्दी के शिष्य थे। इस काल के ईरान सूफियों पर इबकुलफारिस के वहदतुल बुजूद (अद्वैतवाद) का प्रभाव दिखाई देता है। तेरहवीं सदी में ईगन के महान सूफी जलालुदूदीन रूमी हुए। उन्होंने अपने सूफी ग्रंथ मसनवी मानवी में कुरआन के उपदेशों को कविताबद्ध किया। सूफी मत में इन्होंने मौलविया संप्रदाय की स्थापना फरीदुदूदीन अत्तार हुए। जिन्होंने मुन्तकीउत्तैर को रचना की। इसी श्रृंखला में जामी ने लवाहे जामी लिखकर अपना योगदान दिया। जामी इस क्रम के अंतिम सूफी संत थे। इसके बाद ईरान में शिया विचारों का उत्कर्ष बढ़ा और सूफी मत का पतन आरंभ हो गया।

भारत में सूफी चिंतन का आगमन रू

भारत में इस्लाम धर्म का आगमन अरब व्यापारियों के साथ मालाबार तट से हुआ। मुहम्मद बिन कासिम के सिंध पर आक्रमण से बहुत पहले भारत के साथ मुसलमानों के व्यापार संबंध थे। ऐसा लगता है कि उन दिनों चीन से लंका तक इस्लाम धर्म का प्रचार कार्य चल रहा था क्योंकि लंका और दूसरे स्थानों पर इस्लामी प्रचारकों के मकबरे पाये जाते हैं। इबकेबतूता ने लंका में ऐसे कई मकबरे देखे।३०

एक मुसलमान लेखक के अनुसार सबसे पहले मालाबार में मुसलमान धर्म प्रचारकों का एक दल आया जो लंका में आदम के पद चिह्न के दर्शन करने जा रहा था। इस दल का नेता शेख सरफ बिन मालिक था। यह दल करंगनोर मालाबार के राजाओं को धर्म उपदेश द्वारा मुसलमान बनाने में सफल हुआ। लोगों का विश्वास है कि यह घटना हजरत मुहम्मद ' के जीवन काल की है।३१

दक्षिण काल में मुसलमान जाति खुतन ह जो सूफी सईदनथर शाह ६६६–१०३६ ई. के प्रति श्रद्धा रखती है। आज भी त्रिचनापल्ली में मुसलमान उनके मकबरे के दर्शन को जाते हैं। खुतन तमिलभाषी प्रांत में पाये जाते हैं। ये लोग मदरै, कोयम्बतूर, उत्तरी कर्नाटक और नीलगिरी अंचल में रहते हैं। इसी प्रकार दक्षिण भारत की एक मुसलमान जाति दुदैकुल है जो बाबा फखरूदूदीन के प्रति श्रद्धा भाव रखती है। बाबा फखरूदूदीन के बारे में कहा जाता है कि वे सीस्तान के राजा थे और अपने भाइयों को राजपाट सौंपकर फकीर हो गए थे। उन्होंने मक्का और मदीना की यात्रा की थी। हजरत मुहम्मद ' ने स्वप्न में उन्हें भारत जाकर धर्म प्रचारक का आदेश दिया। वे दक्षिण भारत आये और त्रिचनापल्ली के नथरशाह (६६६–१०३६ ई.) के शिष्य हो गए। सूफी फखरूदूदीन से प्रभावित होकर पेनकोंडा का राजा मुसलमान हो गया।

उत्तरी पश्चिम भारत में सूफी मत के प्रचार के संबंध में बहुत सी कथाएं प्रचलित हैं। उनमें से एक बाबा रतन की कथा है। यह भारत के रहने वाले थे और दो बार मक्का गए थे। बाबा रतन हिंदू थे परंतु दूसरी बार जब वह मक्का से भारत लौटे तब इस्लाम धर्म स्वीकार कर चुके थे। बाबा रतन को हजरत मुहम्मद ' से मुलाकात हुई थी। वह सात सौ वर्ष तक जीवित रहे। इनका उल्लेख इबके हजरत ने अपनी पुस्तक "असवा फी मारिफतिस्सहाबाश में तथा थहानी ने अपनी पुस्तक तजरीद में किया और इन दोनों ने बाबा रतन को सहाबी की उपाधि दी।३२

बीबी पाक दामन की कहानी भी इसी प्रकार की है। लाहौर में उनके एक साथ सात मकबरे बने हुए हैं। इनमें छरू तो हजरत अली के परिवार की थीं और एक उनकी दासी बीबी तनूर की थी। छरू में एक बीबी रूकैया थी जो हजरत अली कौ पुत्री थी और शेष पांच बीबी हूर, बीबी नूर, बीबी गौहर, बीबी ताज और बीबी शाबाज हजरत अली के चचेरे भाई अकील की पुत्रियां थो। कर्बला के मैदान में जब यजीद की सेनाओं ने जब हजरत अली को घेर लिया तो उन्होंने अपने परिवार की कुमारियों को वहाँ से निकल जाने का आदेश दिया वे भटकती हुई लाहौर आ पहुंची। वहाँ के एक हिंदू राजकुमार ने उन्हें अपने महल में चलने को कहा। बीबी ताज ने क्राधपूर्ण दृष्टि से उसको देखा और वह अचेत होकर गिर पड़ा। फिर जब वे महल में कैद कर दी गयी तो उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि धरती फटे और वे उसमें समा जाए और ऐसा ही हुआ। राजा इस घटना से प्रभावित होकर मुसलमान हो गया। उसने अपना नाम अब्दुल्लाह रख लिया, जो बाबा खको के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिसकी मृत्यु सन ७१६–२० ई. में हुई। उसकी कब्र भी पाक दामन बीवियों के मकबरे के पास है। महमूद गजनबी ने अपने आक्रमण के समय इन मकबरों की चौहदूदी खिंचवाई और अकबर बादशाह ने इनका पुनर्निर्माण कराया। ३३

भारत में मुसलमानों का सबसे पहला आक्रमण सन ७११ ई. में हज्जाद बिन यूसुफ के अरब सेनापति इस्लामुदीन मुहम्मद बिन कासिम द्वारा हुआ। इसके बाद कई सूफी साधक भारत आये। सिंध में सूफो मत का प्रवेश उस्मान शाह द्वारा हुआ। सैय्यद उस्मान शाह अपने तीन मित्रों शेख बहादुर, शेख फरीदजंग, शेख जलालउद्दीन के साथ बगदाद से अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए भारत आये। सिंध और पंजाब में सूफी साधक इन्हीं लोगों के शिष्य हुए और धीरे–धीरे आसपास के स्थानों में फैल गये।

उत्तरी भारत में पहले पहल आनेवाले सूफियों में शेख इस्माइल का नाम आता है। यह सन १००५ ई. में लाहौर आये। इन्होंने बहुत से लोगों को अपनी आध्यात्मिक शक्ति के प्रदर्शन द्वारा मुसलमान बनाया। इसके बाद सूफो साधक अली हुजवेरी का नाम आता है। इन्हें दातागंज बख्श भी कहा जाता है। सूफी चिंतन एवं सिद्धांनों पर इन्होंने कश्फुल महजूब नामक प्रमुख पुस्तक लिखी। हुजवेरी ने अपने आध्यात्मिक विचारों से भारतीय जनता को अत्यधिक प्रभावित किया।

अली हुजवेरी के बाद सैय्यद अहमद सुल्तान का नाम आता है। इन्हें लोग लख्खी दाता भी कहते हैं। कुछ लोग इन्हें सुल्तान मियां भी कहते हैं। मुल्तान के पास

RRIJM 2015, All Rights Reserved

शाहकोट में इनकी मजार है। ग्यारवीं शताब्दी में सैय्यद सालार मसूद गाजी का आगमन भारत में हुआ। इन्हें लोग बालेमियां भी कहते हैं। इनकी मजार बहराइच (उ. प्र.) में है। ग्यारवीं शताब्दी में ही शेख़ बहाउददीन जकरिया भी आये जो शेख़ शहाबुदूदीन सुहाखर्दी के मिलने वालों में थे। इन्होंने मुल्तान में खानकाह स्थापित की। इनकी मृत्यु सन १२६३ ई. में हुई।

बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सूफियों में ख्याजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी नाम आता है। इनकी मजार अजमेर में है। यह तीर्थ यात्रा के लिए मदीना जा रहे थे कि स्वप्न में इन्होंने हजरत मुहम्मद " को देखा। हजरत मुहम्मद " ने इन्हें आदेश दिया कि वह भारत चले जाएं। यह भारत चले आये और और अजमेर में ठहर गए। इनके चमत्कारों की ख्याति इतनी बढ़ी की हिंदू–मुस्लिम दोनों संप्रदाय के लोग इनके शिष्य बनने लगे। सबसे पहले जिसे इन्होंने मुसलमान बनाया वह एक योगी था और वहाँ के राजा का गुरु था।३४

इनकी शिष्य परंपरा के ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी फरीदुदूदीन गंज जो बाबा फरीद के नाम से जाने जाते हैं। इसी क्रम में निजामुद्दीन औलिया, मकदूम अली साबिर कलिमरी, शाह नियाज अहमद बरेली और हाजी वारिस अली शाह जैसे सूफी संतां ने समस्त भारत में सूफी चिंतन की परंपरा को विभिन्न आयाम प्रदान किए। इस सूफी चिंतन की प्रक्रिया निरंतर चल रही है।

संदर्भ :

१. अल सर्राज किताब अल–लुमा फी अल–तसव्बुफ, लंदन १६१४, पृ. २१
२. कुरआन, सुर रू मुजम्मिल, आयत–१
३. मखदमू अली हुजबेरी (दादा गंज बख्श) कश्फुल (लाहौर १६२३ ई.), पृ. ६३–६३
४. वही, पृ. २३
५. वही, पृ. २३
६. हरदेव सिंह रू भारतीय इतिहास और साहित्य में सूफी दर्शन, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ (उ. प्र.), पृ. १७
७. वही, पृ. १७
८. वही, पृ. १७
९. शेख़ शहाबुदूदीन सुहारवर्दी रू अवारिफुल मवारिफ, पृ. १०२
१०, बिशप जॉन ए सुभान रू सूफिज्म, पृ. १
११, डॉ. रामपूजन तिवारी रू सूफी मत, साधना और साहित्य, पृ. १७०
१२. वही, पृ. १७८
१३. श्री चंद्रबली पाण्डेय रू तसव्वुफ अथवा सूफी मत, पृ. १
१४. शेख शहाबुदूदीन सुहारवर्दी रू अवारिफुल मुवारिफ, पृ. १०५
१५, मौलाना उरूज कादरी रू इस्लामी तसव्बुफ, पृ. २५
१६. वही, पृ. २६
१७. शेखुल इस्लाम जकरिया अन्सारी रू शरह रिसाला बाबुत्त तसव्बुफ, पृ. २७
१८. मौलाना उरूज कादरी रू इस्लामिक तसव्वुफ, पृ. २८
१६, शेखुल इस्लाम जकरिया अन्सारी रू शरह रिसाला बाबुत्त तसव्बुफ, पृ. २८
२०. मखदमू अली हुजवेरी (दादा गंज बख्श) कश्फुल महजूब (लाहौर १६२३ ई.), पृ. ६५–६६२१. सबसे पहले खलीफा हजरत अबूबक्र (६३२–६३४ ई.), दूसरे खलीफा हजरत उमर (६३४–६४४ ई.), तीसरे खलीफा हजरत उसमान (६४४–७५०६ ई.) और चौथे खलीफा हजरत अली (६५६–६६१ ई.)
२२. कश्फुल महजूब, पृ. ५५
२३. अब्दुल्ला अन्सारी रू तबकातुस्सूफिया, (काबुल, मेहरान १३४१ शम्मी, पृ. ७१)
२४. ईमाम कुशैरी रू अल–रिसालतुल कुशैरिया, (मिस्र १३४६ हि.), पृ. ७–८
२५. नूरूजुज्जहब (पेरिस) भाग ४, पृ. ६५
२६. सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी एवं शैलेश जैदी रू अलखबानी, भारत प्रकाश मंदिर, अलीगढ़–१६७०, पृ. ६
२७, वही, पृ. ६
२८. अब्दुल्ला अन्सारी रू तबकातुस्सूफिया, (काबुल, मेहरान १३४१ शम्मी, पृ. १२)
२६. वही, पृ. ६–१०
३०. हरदेव सिंह रू भारतीय इतिहास और साहित्य में सूफी दर्शन, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ (उ. प्र.), पृ. ३७
३१. वही, पृ. ३७
३२. असरारूत–तसव्बुफ, मंजि–ए–नक्शबंदिया, लाहौर, अप्रैल १६२५, पृ. १०–११
३३. ए. सुभान रू सूफी सेन्टस एण्ड शाइन इन इंडिया, पृ. १२२
३४. हरदेव सिंह रू भारतीय इतिहास और साहित्य में सूफी दर्शन, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ (उ. प्र.), पृ. ३६

RRIJM 2015, All Rights Reserved